By Dr. Ratan Hembram, Asst. Prof., Dept. of Santali, V.U.
M.A. & M.Phil.
Asst. Professor
Department of Santali
VIDYASAGAR UNIVERSITY
MIDNAPORE-721102, W.B.
20-03-2020

संताल, संताली भाषा एवं साहित्य का विकास

संताल: आदिवासियों में संताल भारत के अति प्राचीन जातियों में से एक जाति है। भारतीय संविधान में इनकी पहचान आदिवासी के रूप में न होकर अनुसूचित जनजाति के रूप में की गई है। वर्त्तमान में इसकी संख्या एक करोड़ के लगभग है। गौंड और भील के बाद संताल भारत की आदिवासियों में सर्वाधिक है। भारत की सांस्कृतिक दृष्टि से देखा जाय तो संताल का पहला स्थान है। संताल भारत में ही नहीं भारत से बाहर नेपाल, भूटान, बांग्लादेश, बर्मा (मयान्मार) आदि कई देशों में रहा करते हैं। वर्त्तमान में संताल भारत के पश्चिम बंगाल, बिहार, झारखण्ड, उड़िसा, असम, मेघालय, अरूणाचल प्रदेश, मिजोरम, नागालैण्ड आदि कई प्रान्तों में सघन एवं विरल रूप में भारत के सभी प्रान्तों में पाये जाते हैं।

संताल अपना प्रथम जन्मस्थल – 'हिहिडी – पिपिड़ी' अर्थात् 'सिसली' द्वीप भूमध्यसागर में आज से लगभग 5–6 हजार वर्ष पूर्व को मानते हैं। ये अण्डज् हैं अर्थात् 'हंस' एवं 'हंसिनी'(हांस–हाँसली) के दो अण्डे से 'पिलचु हाड़ाम– पिलचु बुढ़ी' के नाम से करम पेड़ के उपर 'शीरण'(कूश) घोंसला पर जन्म लिये थे। इनके इष्ट देव 'मारांबुरू' की कृपा से बड़े हुए एवं बाद में पिलचु दम्पत्ति से सात लड़का एवं सात लड़की हुए। पुत्र का नाम – सांदरा, सांदम, चरे, माने, आचारे–देल्हु, दुबराज और बानाब कुछ लोग–दुबराज, लाखाय, बानाव, चरे, गालू, माने, आचारे–देल्हु मानते हैं। ये भाई –बहन प्रारंभ में अनजान में सुंड़कुच् जंगल के चापाकिया बरगद वृक्ष के नीचे उम्र के अनुसार विवाह संबंध स्थापित कर परिवार रचे थे। कालकम में इन सबों की वंशवृद्धि हुई तथा आगे चलकर उसे पिलचु बुढ़ा–बूढ़ी द्वारा उम्र के अनुसार गोत्रों का विभाजन किये वे हैं – हांसदाक् वास्के, किस्कू, हेम्ब्रम, मार्डी, सरेन टुडू कुछ समयान्तराल के बाद आगे– बेसरा, मुर्मू, पांवरिया, चौड़े, वेदेया प्रदान किये। जाति गोत्र एवं पेशा के अनुसार – हाँसदक् – न्यायकर्ता थे, किस्कु –राजा, वास्के –व्यापारी, हेम्ब्रम –मंत्री (कुंवार) एवं ओझा, मार्डी – कृषक (धनवान), सोरेन–सिपाही, टुडू–रसिक, मान्दर–नगाड़ा बजाना एवं लोहाकार्य, मुर्मू– पुजारी, बेसरा – नृत्यांगना, चौड़े –शिकारी आदि थे। इनके वंशावली एंव गोत्र के अनुसार कुछ गढ़(गाढ़) भी थे जैसे –हाँसदाक् के मायनोमाती या मानगाढ़ या कुयमपुरी गाढ़, किस्कुके– कंयडागढ़, हेम्ब्रम के खैरीगढ़, मार्डी के –बादली गढ़, टूडू के सीमगढ़/चायगढ़, मुर्मू के चाम्पागढ़, सोरेन के चायगढ़, पांवरिया के पामागढ़, चौड़े के कडे, वैदेया के होलोगढ़ आदि थे।

संताल के पूर्वज् विभिन्न देश या स्थानों में जीवन काल में एक स्थान से दूसरे स्थानों में मंडराये थे। ये कालकम में हिहिड़ी– विपिड़ी जिसे भूमध्यसागर के सिसिली द्वीप, खोजकामान अर्थात् काजिकास्तान, हाराता अर्थात् इरारात/हरिरूद/ईराक–ईरान/अफगानिस्तान, सांसाबेड़ा अर्थात् लोहिसागर या लालसागर की मैदानी क्षेत्र, जारपी, आयरे अर्थात् ईरान, कोयडा/ काण्डाहारी अर्थात् अफगानिस्तान/कान्धार (गन्धार), चाय–चाम्पा अर्थात् पाकिस्तान–सिन्धु नदी क्षेत्र, पंजाब जिसे मलय प्रायद्वीप क्षेत्र, तोड़ेपुखरी– बाहा–बांदेला जिसे बादोली अर्थात् गुजरात, जोनाजसपुर अर्थात् जसपुर (म0प्र0), खासपाल– वेलौंवजा, सीर– शिकार अर्थात् हजारीबाग

(गिरीडीह), सांतभूम (समंतभूमि) जो वर्त्तमान पश्चिम बंगाल के मेदिनीपुर जिला स्थित सामंत भूमि, सामंतभूम या सामंतभुंय सिलवा परगना क्षेत्र में पड़ता है। यहाँ से संताल लोग कुछ उड़िया, बिहार, झारखण्ड,असम आदि कई प्रान्तों में बिखरे हुए हैं।

संताल लोगों को जातीय नाम 'होड़' है। ये लोग आपस में अपने आप को 'होड़' कहते हैं। संताल नामकरण अठारहवीं सदी के आस–पास सामंतभूमि, सांतभूम, समानतापाला, समानतावाला, सांवतार, समतल क्षेत्र से अंग्रेजों द्वारा संताल नाम दिया गया है।

संताल का कद मझला है। इनका रंग श्याम एवं सांवले हैं। इनके मुंह, होंठ, ठुड्डी, नाक, कान, बाल आदि छोटा–बड़ा हुआ करते हैं। इनका मुख्य पेशा कृषि रहा है। शिकार एवं आखेट इनके जीवन का अभिन्न अंग है। इनकी विचार, भावना बहुत ही सरल स्वभाव के हैं। अन्य आदिवासियों की तरह ये भी बहुत कम वस्त्रों का उपयोग करते हैं। शहरों के सम्पर्क में आकर अब ये लोग सामान्य लोगों की भाँति वस्त्रों का उपयोग करने लगे हैं। इनकी परम्परागत जीवन शैली, रीति–रिवाज, संस्कार एवं धर्म आदि बड़ी अनोखी है। संताल मुख्यतः चावल, दाल, गेहूँ, मकई, गुंदली, मड़ुवा, कोवो, साग, सब्जी, मौसमी–फूल, फल, कंद आदि बड़ी चाव से खाते हैं। इनका पेय पदार्थ चावल से बना हंड़िया है। ये अपने विविध सांस्कृतिक अनुष्ठानों में अपने पारंपरिक वाद्य यन्त्रों –मान्दर, नगाड़ा, राहड़ा, चड़चुड़ी, ढाक–ढोल, बांसुरी, केंदरी, भूवां, शाकवा आदि का प्रयोग करते हैं। ये विविध अपने पर्व –त्योहारों को बहुत ही निष्ठा के साथ सम्पन्न करते हैं। इनकी अपनी एक सामाजिक व्यवस्था हुआ करते हैं। समाज में माझी(प्रधान) -, नायके(पुजारी), पाराणिक(जोगमाझी), गोडेत् (डकुआ) एवं ग्रामीण पंच हुआ करते हैं। जाहेरथान, माझीथान, ग्राम आखड़ा इनके प्रमुख धर्मस्थल हैं। इनके इष्ट देवों में – मारांबुरू(लिटा), जाहेरएरा(आयो), मोड़ेको–तुरूयको, धोरेम–गोसाम(पिलचु हाड़ाम–बूढ़ी), सीमा साड़े, गौसाड़े बाबा या माझी हाड़ाम (जीवित/मृत) एवं अन्य सीमा क्षेत्र के नदी, नाला, पहाड़, वन–जंगल के देवी –देवतागण को मानते हैं। इनका अपना पंचांग फाल्गुन से माघमास तक चलता है। संताल माह की गणना –फागुन, चात, बायसात, झेट, आसाढ़, सान, भादर, दांसाय, सोहराय, आंघाड़, पुस, माघ के नाम से होता है। संताल के प्रधान पर्व में बाहा एवं सोहराय है।

संताली भाषा : संताली आग्नेय (आस्ट्रिक) भाषा परिवार की आधुनिक भारतीय भाषा है। संताली का उद्भव और विकास इस देश में संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी आदि के नजदीक रहते हुए आग्नेय परिवार की पश्चिमी (आस्ट्रोएशियाटिक) शाखा से हुआ है तथा मुण्डारी, हो, खड़िया आदि इनकी सहोदर भाषा है। संताली भाषा भारत के आदिवासियों में से सबसे बड़ी शाखा है। विद्वानों का मत है कि संताली लोग भूमध्यसागर के तटों से आकर इस भारत देश के हरे–भरे उपजाऊ मैदान में बस गये थे परन्तु समयान्तराल में आर्यों की वर्ण –व्यवस्था से खिन्न आकर संताल लोग उत्तर भारत गंगा किनारे से भागकर बिहार के दक्षिणी भाग, झारखण्ड, पश्चिम बंगाल, उड़िसा, असम, मध्य प्रदेश के जंगल और पहाड़ी क्षेत्रों में शरण लेनी पड़ी। संताली भाषा

आरट्रोनेटिक भाषा परिवार के कोलमुण्डा परिवार के अन्तर्गत आता है। आगे चलकर संताली, मुण्डारी, हो एवं खडिद्यया के लिए खेरवारी भाषा के रूप में उपयुक्त समझा गया।

संताली में 'खेखाल' एक धर्म समूह का नाम है। जिस समय संताली को धर्म परिवर्तन के लिए बाध्य किया जा रहा था उस समय संताली के धार्मिक अग्रणी नेता भागीरथ माझी ने धर्म आन्दोलन चलाकर संताल के धर्म को 'खेरवाल धर्म' बताये थे। खेरवाल धर्म मूलतः संताली, मुण्डारी, हो, खड़िया के लिए भी भाषायी आधार पर या वंशावली के आधार पर सबसे उपयुक्त धर्म शाखा वर्तमान समय तक धार्मिक दृष्टि से दावेदार हैं।

संताली अपने आप को 'होड़' वर्त्तमान समय तक कहते आये हैं। संताली अपनी भाषा को होड़ रोड़ एवं होड़ पारसी भी कहते हैं। कभी –कभी संताली भाषा को माझी भाषा या ठारभाषा भी कहे जाते हैं । उत्तर बंगाल में संताली भाषा को जंगली या पहाड़िया भाषा भी कहा जाता है। संताली भाषा को मारांबुरू या लिटा द्वारा प्रदत्त खेरवाल आड़ां भी कहा जाता है। संताली भाषा का जन्म होड़ रोड़ के रूप में उनके सृजनकाल से ही आज से 5–6 हजार वर्ष पूर्व में ही हो चुका है परंतु इनकी लिखित या शिष्ट साहित्य के रूप में 1845ई0 से अंग्रेज खे0 जर्मिया फिलिप्स के द्वारा विकास शुरू की गई हैं। लिखित या शिष्ट भाषा–साहित्य के प्रारंभ के पूर्व संताली भाषा साहित्य के लिए संताली अलिखित या मौखिक भाषा साहित्य प्रचलन में था। आज भी इनके कुछ अलिखित या मौखिक साहित्य के बिनती, बांखेड़, ओंड़हे, काहनी आदि कई रूपों में अभी भी विद्यमान है। अभी उन सब मौखिक भाषा –साहित्य का दिनों–दिन कई कारणों से ह्रास एवं लुप्त होते जा रहे हैं। अभी भी संताली मौखिक भाषा साहित्य के सिंगराई विधा का एक महत्त्वपूर्ण भाग प्रायः लुप्त होता गया है।

संताली भाषा को उन्नीसवीं सदी के मध्य में लिखित रूप देने के लिए चेष्टाएँ की गई है। संताली भाषा को स्थायी रूप देने के लिए शुरू में कैथी लिपि, बाद में बंगला, रोमन, देवनागरी, उड़िया आदि कई लिपियों में लिखी गई, परंतु इनमें से कोई भी एक संताली भाषा के लिए मानक एवं उपयुक्त लिपि स्थापित नहीं हो सकी। संताली भाषा की अपनी कुछ विशिष्ट ध्वनि होने के कारण इन ध्वनियों को स्पष्ट एवं सही रूपों मे अभिव्यक्त नहीं कर पाती है। संताली भाषा के लिए एक स्वतंत्र 'संताली लिपि' जिसे 'ओलचिकि' लिपि भी कहा जाता है, पं0 रघुनाथ मुर्मू द्वारा 1925 ई0 में आविष्कार किया गया है। यह संताली लिपि या ओलचिकि लिपि पं0 रघुनाथ मुर्मू द्वारा ही असेका (आदिवासी सोसियो एडुकेशनल एण्ड कल्चरल एशोसियेशन–उड़िसा) 1964–65 ई0 में गठन कर ये इनके विकास में कार्य करने लगी है। अभी कई गैर सरकारी, अर्द्धसरकारी, सरकारी संस्थाएँ संताली भाषा साहित्य के विकास में कार्य कर रही है। अभी भी संताली भाषा –साहित्य के लिए लिपि समस्या एक वृहत समस्या के रूप में खड़ी है। वर्तमान समय में संताली भाषा –साहित्य के लिए रोमन, देवनागरी, बंगला, उड़िया एवं ओलाचिकि समान रूप से क्षेत्र विशेषस में एवं संस्था विशेष में कार्य कर रही है क्योंकि वर्त्तमान में संताली भाषा साहित्य एक अन्तर्राष्ट्रीय भाषा –साहित्य के श्रेणी में रखी जा सकती है। वर्त्तमान में

जातीय एकता, जातीय पहचान, भाषा–साहित्यिक एकरूपता, वैज्ञानिकता आदि कई तत्वों के आधार पर एक ही लिपि से संताली भाषा साहित्य को लिखित रूप देनी होगी।

संताली भाषा भारतीय भाषाओं के बीच में एवं संसार की भाषाओं के बीच में एक अलग विशेषता रखती है। इसमें भाषागत ध्वनियों को उच्चारण एवं भाषायिक रचना अलग है। संताली भाषा में दीर्घतालव्य ध्वनि एंव अवरूद्ध ध्वनियाँ बहुत अधिक हैं जिससे भाषा की एक अलग विशेषता बनती है। संताली भाषा में मध्ययोगात्मक गुण है इसलिए शब्द रचना में भी ये अलग विशेषता रखती है। संताली भाषा में एक ही शब्द बिना किसी रूपान्तर के संज्ञा, विशेषण एवं क्रिया में प्रयुक्त किया जा सकता है। संताली भाषा क्रिया प्रधान भाषा है अतः इनके शब्द भी अलग हैं। संताली भाषा की कुछ कतिपय विशेषताएँ निम्न प्रकार दिये जा सकते हैं – (1) संताली शब्द में एक लिपि से भी शब्द का निर्माण संभव है। जैसे– ओलचिकि के प्रायः अधिकांश लिपि शब्द की दृष्टि से अलग किया जा सकता है। 'अ' से 'अ' ध्वनि (उच्चारण) यानि हवा एवं नहीं है। 'अत्' –धरती, 'अग्/अगः'–किसी को धुंआ देना या गला की आवाज, 'अं '– मुंह से हवा फूकना, 'अल' –हाथ/कलम से लिखना है। 'आ' –मुर्गा –मुर्गी को आ–आ बुलाना, 'आक्' –आक् –आक् पक्षियों की आवाज, आज् – दूर का दूसरा व्यक्ति, 'आम' – नजदीक का कोई व्यक्ति, 'आव'– औरतों की आश्चर्य सूचक आवाज आदि है।

(2) संताली शब्द उच्चारण की दृष्टि से एक झटका (खंड), दो झटका(खंड) एवं तीन या तीन से अधिक झटका(खंडों) से बनता है। अतः शब्द निर्माण में झटका रहता है।

(3) संताली शब्दों में व्यंजन ध्वनियुक्त शब्द बना हुआ रहता है। जैसे – लुग्ड़ी, उग्लो, मुग्ली, अज्रा, काच्रा, बाअ्ड़ा, काराज्, बाज्, बाव, खाद्, आंवड़ा, जांब्डू आदि। व्यंजन या अर्द्धव्यंजन लिपि या अक्षर शब्द के पूर्व में रखकर शब्द निर्माण नही किया जा सकता है।

(4) संताली शब्दों में नासिका ध्वनि (मुंटुडाक्), दीर्घतालव्य ध्वनि(गाहला) और नासिका युक्त दीर्घ –तालव्य ध्वनि वाली शब्द प्रचुर मात्रा में है। जैसे – मंजू, चौदा, बाद, खाद्,खाराय्, लाय, बांदी, हांडी, रांडी आदि हैं।

(5) संताली 'कथा भाग' में शब्दों के बीच दूसरी भाषा से अलग हैं और वे 'जेनरेद' शब्द कहलाते हैं। ये 'जेनेद' शब्द से पूर्णतः अलग हैं। 'जेनेद' बोलने से योजन शब्द का पता चलता है। जेनरेद बोलने से जोड़ने वाले शब्द हैं, यह शब्द 'जेनेरेद' शब्द से अलग हैं। जैसे – 'आम दो ओका तेम चालाक् काना' मे 'दो' 'जेनरेद' शब्द है। इसी प्रकार 'बुरू दो, उसूल गेया' में दो जेनरेद शब्द हैं। हिन्दी,बंग्ला आदि में 'जेनरेद' को विशेष शब्द कहे जाते हैं। जेनरेद में – मा, होत्, गोत्, इवी, दारा, तोरा, ओक्, हाताड़, उतार आदि कई शब्द हैं। ये कथन के आठ भागों में किसी के साथ नहीं रखा जा सकता है।

(6) संताली में समधी –समधिन, सास–स्वसुर, आझनार (पत्नी की बड़ी बहन), पुत्र वधु, फूफा आदि के लिए अलग –अलग आदर सूचक शब्दों का प्रयोग होता है।

(7) संताली शब्द प्रयोग में बैठने शब्द के लिए प्रयोग जीवधारियों के लिए अलग–अलग हैं। वैसे ही काटना क्रिया के लिए भी अलग अलग शब्द हैं।

(8) संताली शब्दों में मध्ययोगात्मक हैं जैसे – माझी – मापाझी, हाड़ाम–हापड़ाम, उरूम–उपुरूम, ओल–ओपेल आदि। संताली में प,पा, पु,पे,पो, पां, पैं आदि से मध्य योगात्मक शब्द बनते हैं।

(9) संताली शब्दों के पठन –पाठन बांया से दांया होता है, यही कम पूजा –पाठ में भी दर्शाते हैं।

(10) संताली में शब्दों का भंडार है यही वजह था कि 1990 दशक तक पी०ओ० बोडिंग द्वारा पांच भोल्युम में रचित सात खंडवाली, संताली शब्दकोष दुनिया में अद्वितीय था।

(11) संताली शब्दों के बीच दूसरे भाषाओं की शब्दों को ग्रहण करने में असीम क्षमता है।

(12) संताली में शब्द या कथन अंग में संबंध सूचक शब्दों के संज्ञा शब्द पूर्व में शब्द को नहीं जोड़कर संज्ञा के बाद जोड़ा जाता है।

(13) संताली भाषा भारत के लगभग एक करोड़ से अधिक संतालों की मातृभाषा है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर यह भाषा अन्यों के लिए भी विचार विनिमय का साधन है।

(14) संताली शब्द में किया के साथ 'इज' (ᱤᱡ) प्रत्यय युक्त होने से प्राणीवाचक और 'आक्' (ᱟᱠ) प्रत्यय जोड़कर शब्दों के चीजों का पता चलता है।

(15) संताली शब्दों में 'किन' और 'को' कमशः द्विवचन और बहुवचन समझा जाता है।

(16) संताली शब्दों में तीन प्रकार के शब्द पाये जाते है – (i) संताली का अपना शब्द (ii) संस्कृत या अन्य भारतीय भाषाओं के शब्द, (iii) अंतर्राष्ट्रीय भाषायिक शब्द –जैसे अंग्रेजी, फारसी शब्द आदि हैं।

(17) संताली शब्दों में आदर या सम्मान पाने योग्य कोई खास सर्वनामिक शब्द नहीं है अर्थात् सभी शब्द सम्मानीय है। संताली में सम्मान सूचक शब्द में गो (ग) को माना जा सकता है।

(18) संताली भाषा में विशेषण शब्द प्रायः संज्ञा के पूर्व ही रहते हैं।

संताली में शब्दों के गुण भरपुर रहने के कारण आदिकाल से वर्त्तमान समय तक यथावत है। भाषायिक शब्दगुण के कारण बोली में रहते हुए भी सुरक्षित हैं। यही वजह है कि संतालों का मौखिक साहित्य समृद्ध है। शब्द गुणों से परिपूर्ण रहने के कारण अब तक ठोस रूपों में विद्यमान है।

संताली साहित्य : संताली भाषा संतानों की मातृभाषा हैं। प्रारंभ में संताली भाषा को होड़ सोड़ (होड़ बोली), होड़ पारसी(होड़भाषा), होड़ सांवहेद(होड़ साहित्य) के रूप में जानी जाती थी अर्थात् ये संताली बोली, संताली भाषा, संताली साहित्य का ही पर्यायवाची रूप है। साहित्य के दो रूप हुआ करते हैं

(1) मौखिक साहित्य या लोक साहित्य एवं (2) लिखित साहित्य या शिष्ट साहित्य।

संताली लिखित साहित्य का प्रारंभ उन्नीसवीं सदी के मध्य यानी 1845 ई० से माना जाता है क्योंकि 1845 ई० में स्व० जर्मिया फिलिप्स ने सर्वप्रथम 'ए संताली प्राईमर' (A Santali Primer) को लिखित रूप देकर प्रकाशित किये थे। इसके कुछ वर्ष बाद बी०एच० हॉडगोन (B.H. Hodgoaon) ने 1848 ई० में " दि एब–अरिजिनल ऑफ सेन्ट्रल इण्डिया" (The Aboriginal of Central India) नामक पुस्तक का कलकत्ता से प्रकाशित

किया था। आगे फिर रेव जर्मिया फिलिप्स ने 1850 ई0 " सिक्वल टु ए संताली प्राईमर (Sequel to a Santali Primer) और 1852 ई0 में "एन इन्ट्रोडक्शन टु दि संताली लैंग्वेज(An Introduction to the Santali Language)" एवं "फॉकलोर ऑफ संताल (Folker of Santal) " का प्रकाशित किये थे। इस लिखित साहित्य के पूर्व संताली साहित्य मौखिक साहित्य या लोक साहित्य के रूप मं संताल या होड़ के आदिकाल अर्थात् आज से पांच –छः हजार वर्ष पूर्व से रहा है। प्राचीन काल में होड़ या संताली भाषा की लिखित साहित्य थी या नहीं इसे कहना कठिन है। इनकी लोकगीत, लोकगाथा, लोककथा, लोककहानी आदि इनके आदिकाल से ही रहे हैं क्योंकि इन सबों का अवशेष अभी भी देखा एवं सुना जा सकता है। संताली लोकगीत, लोकगाथा, लोककथा, लोककहानी आदि वर्त्तमान में लिखित साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण योगदान है।

साहित्य शब्द का साधारण अर्थ दूसरों की भलाई करना। विद्वानों ने साहित्य को " स हितम् साहित्यम्" कहा है अर्थात् दूसरों की हित या भलाई ही साहित्य है। इसी आधार पर संताली साहित्य संताली की हित या भलाई से है। साहित्य समाज का का दर्पण एवं सुरक्षा कवच है। साहित्य का समाज से अभिन्न संबंध रहता है। संताली साहित्य भी संताल समाज के आदिकाल से अभिन्न संबंध रहा है। संताली साहित्य भी संताल समाज के मौखिक एवं लिखित रूप परम्परागत रूप से पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित करते आ रहे है। संताली साहित्य को समझने के लिए इनके मौखिक एवं लिखित साहित्यिक विधाओं का उल्लेख करना समीचिन होगा।

संताली मौखिक साहित्य : संताली मौखिक साहित्य संताली साहित्य का प्रथम भाग है। संताली मौखिक साहित्य को होड़ साहित्य या लोक साहित्य कहा जाता है। संताली मौखिक संताल के आदिकाल से यानी प्राचीन काल से अब तक मौखिक चर्चाओं में रहे हैं। इस साहित्य को कोई निश्चित समय या स्थान नहीं हुआ करता है। संताली मौखिक यां लोक साहित्य में लोकगीत, लोकगाथा, लोककथा, लोककहानी, लोकोक्ति, मुहावरें, कहावतें , कुछुम (पहेली), विविध बिनित– छाट्यार बिन्ति, बायला बिन्ति, भांडान बिन्ति, कारम बिनित, जोमसिम बिनित, मारांबुरू बिन्ति, बाखेंड़ (मंत्र), सिंगराई (जंगलगीत), झारनी आदि कई रूपों में शुरू से अब तक चलते आ रहे हैं। ये सारी संताली लोक विधाएँ संताली लोक साहित्य को वर्तमान समय तक शुसोभित करते आ रहे हैं। लोक साहित्य में संताली लोकगीत, लोककथा, सिंगराई इत्यादियों का बहुत बड़ा भंडार है। बहुत सारे लोक तथ्य दिनोंदिन ह्रास के कगार पर हैं। ये लोक साहित्य लिखित या शिष्ट साहित्य के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण प्रेरणा श्रोत हैं। इसकी रक्षा करना बहुत अपेक्षित है।

संताली लिखित या शिष्ट साहित्य – संताली लिखित या शिष्ट साहित्य का प्रारंभ उन्नीसवीं के मध्य से अंग्रेज मिशनरी विद्वान रेव0 जर्मिया फिलिप्स द्वारा सन् 1845 ई0 में सर्वप्रथम "एसंताली प्राईमर " नामक पुस्तक को प्रकाशित किये थे। इनके बाद बी0एच0 हेडगोन द्वारा 1848 ई0 में " दि एव अरिजिनल ऑफ सेन्ट्रल इण्डिया" नामक पुस्तक का कलकत्ता से प्रकाशित किया गया था। 1850 ई0 में फिर रेव0 जर्मिया फिलिप्स द्वारा

संताल"को प्रकाशित किये थे। ये संताली भाषा साहित्य को एक दिशा देने का प्रयास किया है। संताली साहित्य का प्रारंभ जर्मिया फिलिप्स के द्वारा ही माना जाता है, इसे अधिकांश विद्वान स्वीकार करते हैं। इसी प्रकार जी0 कैम्पवेलने 1866 ई0 में " दि इथनोलॉजी ऑफ इण्डिया " कलकत्ता से प्रकाशित कराया था। ऐसे ही अंग्रेज विद्वान रेव0 ई0 एल0 पुक्सले ने 1868 ई0 में "ए वोकाबुलारी ऑफ दि संताली लैंग्वेज" प्रकाशित कराकर संताली लिखित या शिष्ट साहित्य को नई दिशा दी है। ई0 जे0 मेन ने भी 1867 ई0 में "संतालिया एण्ड टु संताल्स" का प्रकाशन कलकत्ता से कराये थे। ई0 टी0 डाल्टन ने भी 1872 ई0 में "दि डिस्क्रीप्टीव इथनोलॉजी ऑफ बेंगल (ट्राईबल हिस्ट्री ऑफ इस्टर्न इण्डिया) दिल्ली से प्रकाशित कर संताली साहित्य के लिए अलग ही पहचान मिली। 1873 ई0 में केराप साहब ने "ए ग्रामर ऑफ दि संताली लैंग्वेज" नामक पुस्तक प्रकाशित कराया था। इसी प्रकार भारत स्वतंत्रता तक अंग्रेज विद्वानों ने संताली भाषा साहित्य की लगभग तीन सौ पुस्तकें लिखकर संताली भाषा साहित्य के लिए उपहार दे गये हैं। अंग्रेजी विद्वानों में से जे0 फिलिप्स, पुक्सले, स्के स्कैफरूड्स (Skrafsrud'L.O.), एफ0 टी0 कॉले, कैम्पबेल, बोम्पास, पी0ओ0 बोद्दिंग आदि विदेशी मिशनरियों ने संताली भाषा साहित्य का विकास किये हैं। वर्तमान में संताली भाषा साहित्य को भारत के बंगाली, बिहारी एवं संताली के कई लेखकों ने अपनी लेखनी चलाकर काफी समृद्ध किये हुए हैं।

संताली भाषा साहित्य को काल या समय के आधार पर विद्वानों ने इसे तीन भागों में बांटा है – प्राचीनकाल, मध्यकाल और आधुनिककाल। कुछ विद्वानों ने इसे प्राचीन काल, मिशनरी काल या मध्यकाल तथा आधुनिक काल भी कहा है। मिशनरी काल को पूर्व मिशनरी काल अर्थात् 1845 ई0 से 1889ई0 तक माना जाता है, उत्तर मिशनरी काल अर्थात् 1890 ई0से 1946 ई0 तक माना जाता है। प्राचीन काल 1845 ई0 के पूर्व मौखिक साहित्य काल को माना जाता है। आधुनिक काल 1947 ई0 के स्वतंत्रता के बाद से अब तक के समय को माना जाता है। इसी काल विभाजन में संताली भाषा साहित्य के लिए तीनों काल का ही विशेष महत्व है।

संताली प्राचीन काल में संताली के आदिकाल से उनके लिखित काल के पूर्व तक मौखिक परंपरा के रूप में प्रचलित है। लोकगीत, लोककथा, लोकगाथा, लोककहानी, बिन्ती, बाखेड़ झारनी, लोकोक्ति, मुहावरें, कहावतें, पहेली(कुदुम), सिंगराई, ताल वादय, आदि कई लोक विधा आते हैं। यही लोकसाहित्य या प्राचीनकाल की भाषा साहित्य संताली भाषा साहित्य के लिए ऐतिहासिक , भौगोलिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, नैतिक, भाषा वैज्ञानिक एवं साहित्यिक ये कई प्रकार के महत्व को संजोये रखे है। प्राचीन काल की मौखिक साहित्य वर्तमान लिखित साहित्य का आधार स्तम्भ है। इसे किसी भी प्रकार से नकारा नहीं जा सकता है। संताल के प्राचीनकाल के साहित्यिक गर्भ में वर्तमान काल के साहित्यिक मर्म छिपा हुआ है। अभी भी अनेक संताली लोकसाहित्य अच्छुन्न पड़ा हुआ है। अभी उसे संग्रहित एवं लिखित रूप देकर स्थायी रूप देनी होगी।

संताली लिखित साहित्य 1845 ई0 से प्रारंभ माना जाता है। इसी कम में केराप साहब द्वारा बेनागाड़िया

पेंड़ा' का प्रकाशन कराया था। केराप साहब ने 1887 ई0 में ' ट्रेडिशन एण्ड इन्टीट्यूशनल ऑफ दी संताल्स(होड़ कोरेन मारे हापड़ामको रेयाक काथा– 1887) पुस्तक बहुत बड़ा आधार ग्रन्थ साबित हुआ है। संताली प्रथम लेखक के 'खेरवाल वंशों धोरोम पुथी' 1898 (1902) ई0 में 68 पृष्ठों की प्रथम संताली पुस्तक छपी थी जो अभी अप्राप्त है। इन्होंने 1930 ई0 को पुनः इसी नाम पर लिखकर प्रकाशित कराये हैं। इसकी तीन–.चार संस्करण निकल चुकी है। विशुद्ध संताली साहित्य के प्रथम कविता पुस्तक बाहा डाल्वाक पाउल जुझार सोरेन द्वारा 1936 ई0 में प्रकाशित करवाया था। इसी तरह संताली साहित्य के प्रथम उपन्यास अनुदित रूप " हाड़मावाक आतो" 1946 ई0 (मूल 1935 ई0) में आर0 आर0 किस्कू 'रापाज' द्वारा प्रकाशित हुई थी। संताली की प्रथम लघु कहानी 1947 ई0 में "बापुड़िच्किन" हृदय नारायण मण्डल द्वारा रची गई थी। इसके बाद लघु कहानी का संग्रह 1952 ई0 में बाल किशोर बास्के द्वारा " कुकमु" के नाम से प्रकाशित हुई हैं। संताली साहित्य में प्रथम नाटक पुस्तक पं0 रघुनाथ मुर्मू के द्वारा 'बिन्दु चांदान' 1940 (42) ई0 में प्रकाशित हुआ ह। सुबल हांसदाक तथा सुकचांद बास्के द्वारा रचित ऐतिहासिक नाटक 'मायाम ते तोपो' और 'चाप चाम्पागाढ' भी चर्चा में रहा है। डॉ0 डोमन साहू समीर द्वारा जून 1947 ई0 से स्वतंत्रता के पूर्व ' होड़ संवाद' पत्रिका सम्पादित कर संताली साहित्य को बहुत अधिक बढ़ावा मिला है।

संताली भाषा का आधुनिक काल भारत आजादी के बाद से शुरू होता है। आधुनिक काल संताल समाज में पुर्नजागरण का समय था। इस काल में बिहार, झारखण्ड, उड़िसा , प0 बंगाल, असम आदि कई प्रान्तों में संताली के प्रख्यात लेखकगण पैदा हुए एवं संताली साहित्य को विकसित साहित्य की श्रेणी में खड़ा किये हैं अभी भी कई विधाओं के क्षेत्र में नगण्य काम हुआ है जिसे जल्द ही पूरा करना है। संताली साहित्य विकास की सीढ़ी पर अग्रसर है आशा है इसकी सारी कमियों को निकट भविष्य में दूर किया जा सकता है।

संताली साहित्य बहुत ही समृद्धशाली साहित्य में से है, परंतु लिपि समस्या इसे बहुत अधिक सता रही है। ओलचिकि संताली लिपि से ही लिपि एवं ध्वनिगत उच्चारण समस्याओं को काफी हद तक दूर किया जा सकता है। संताली भाषा साहित्य के देश–विदेशों में विस्तार को देखते हुए इसे एक ही लिपि से विकास करना साहित्यिक विकास की दिशा में बल मिलेगा। संताली भाषा को 22 सितम्बर 2003 को भारतीय संविधान के अष्टम् अनुसूची में अंगीकृत कर लिया गया है। अब संताली भाषा साहित्य के विकास में 'ऑल इण्डिया संताली राईटर्स एशोसियेशन' (आईसवा AISWA) का वर्तमान में सर्वाधिक योगदान रहा है। इसके साथ –साथ कई अन्य सरकारी , अर्द्धसरकारी एवं जातीय संस्थाएँ संताली भाषा साहित्यिक विकास में लगे हुए हैं।

Asst. Professor
Department of Santali
VIDYASAGAR UNIVERSITY
MIDNAPORE-721102, W.B.